मातम

प्रेमपाल शर्मा

मातम

https://www.hindiadda.com/matam/

रास्ते भर मेरे दिमाग में यह बात घूमती रही कि वहाँ पहुँचकर मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए।

देबू की माँ की मौत को आज बीस दिन हो गए थे लेकिन मौत का सन्नाटा तो महीनों बना रहता है। घर में बिखरे झूठे बर्तन, रोते बच्चे, औरतों का जमाव, किस्से-दर-किस्से मौत के, बीमारी के। सारी फिजा में अलग ही तरह की शमशानी सुस्ती व खुसफुसाहट। कब कहाँ से रोने-चीखने की हूक सुनाई पड़ जाए कोई नहीं कह सकता।

पता नहीं देबू की क्या हालत हो? उम्र तो कम नहीं थी माँ की, पर माँ आखिर माँ ही होती है। यही सारी कल्पनाएँ कदमों के साथ चलती रहीं और मुझे खुद पता नहीं चला कि कब देबू के घर पहुँच गया।

दरवाजे पर थपकी देकर मैं एक तरफ गुमसुम खड़ा हो गया। मेरे होंठ जुड़े हुए थे और निगाह निरुद्देश्य सामने की दीवार पर जमी थी।

दरवाजा खुला तो सामने देबू था, हल्का-सा मुस्कराते हुए। मेरा मुँह पसरा हुआ था। उसकी शक्ल देखकर मेरा मुँह भी फैल गया। साथ-साथ चलते हुए हम बैठक में जाकर बैठ गए।

कुछ क्षणों के लिए चुप्पी रही। मेरे होंठ फिर चिपक गए थे।

'मिल गई फुरसत तुम्हें? कहकर उसने मेरे चेहरे पर नजर डाली। 'हाँ भई अब तो तुम बड़े आदमी हो गए हो। अब क्यों आओगे।'

'डैथ किस तारीख को हुई थी? मैंने उसका उलाहना सीधा निकल जाने दिया, 'ज्यादा बीमार थीं?'

'तुम्हें लैटर नहीं मिला? मैंने दो लैटर डाले थे - एक बीमारी का और दूसरा बाद में। तुमने एक का भी जवाब नहीं दिया।'

'दो? दो तो शायद नहीं। एक मिला है। उसका भी मुझे कल पता चला है। मैं बाहर टूर पर गया था।' मैं साफ झूठ बोल गया, 'माँ बीमार कब से थीं?'

वह क्षण भर चुप रहा। 'पूछो मत यार। इतने खराब दिन चल रहे हैं कि बस। इधर माँ बीमार उधर लड़का। कुसुम की तबियत तो अभी भी ठीक नहीं चल रही।' उसने पीछे सरक कर दीवार से कमर लगा ली।

'अच्छा। च्च च्च। यार तुम राजी खुशी की दो लाइन भी नहीं लिख सकते।'

'बेकार की बात मत किया कर। आज तक तुमने कितनी चिट्ठियों के जवाब दिए हैं।' उसकी आवाज में गुस्सा उभर आया था।

मुझे पता था कि हर बार की तरह वह छूटते ही यही बातें कहेगा लेकिन मैंने मन में निर्णय कर लिया था कि पहले माँ की मृत्यु के बारे में पूछूँगा फिर पुत्र-प्राप्ति की बधाई दूँगा और उसके बाद कुसुम भाभी के समाचार लूँगा। 'तुम यहीं थे उन दिनों? माँ को बीमारी क्या थी?'

'मैं यहाँ कहाँ था। बीच-बीच में आता रहता था। आठ जुलाई को स्कूल खुलने थे, मैं उसी दिन चला गया था। उन दिनों माँ को बस हल्का-सा बुखार था। दवाई दिलवा गया था। अमित की तबियत भी तो ठीक नहीं रहती यहाँ गाँव में। उसे यहाँ का क्लाइमेट बिल्कुल सूट नहीं करता।'

'अमित? अमित कौन? अच्छा, आई सी - लड़के का नाम रखा है। बताया तो था विनय ने कि...'

उसने मुस्कराहट भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। लेकिन अगले ही पल गंभीर हो गया, 'बार-बार समझाकर गया था कि दवाएँ टाइम पर लेती रहना, परहेज रखना और कोई भी ऐसी-वैसी बात हो तो तुरंत सूचित करना। सोचा था हफ्ते बाद आ जाऊँगा, पर वहाँ एक नयी मुसीबत आ गई।' उसने गाल एक हाथ पर टिका दिया।

'क्या?' हम दोनों ने एक साथ एक-दूसरे की ओर देखा।

'अमित की तबियत जाते ही खराब हो गई। उल्टी, दस्त, टैंप्रेचर 104 से नीचे ही नहीं जाता था। एक दिन तो सारी रात हम डाक्टर के यहाँ बैठे रहे। सुबह चार बजे हमारी जान में जान आई। अभी है ही कितने दिन का यार। तीन महीने इस आठ तारीख को होंगे।'

'अच्छा।' मुझे लगा कि देबू अब देवव्रत बनर्जी नहीं, श्री डी.वी. बनर्जी, उप स्कूल निरीक्षक, मकान नं. 413, चौराहा खंदारी, चार बच्चों का बाप और चालीस की उम्र का

अधेड़ हो गया है। 'अब कैसी तबियत है? मैंने बच्चे के प्रसंग को बीच में ही काटना चाहा।'

'तबियत तो अभी ऐसे ही चल रही है। मैंने बताया न कि यहाँ का पानी तो उसे सूट ही नहीं करता। उबला पानी देते हैं। कल ही डाक्टर के पास ले गए थे। उसने पेट में कीड़े बताए हैं। रोता ही रहता है हरदम।'

मेरी बच्चे के बारे में जानने की कतई उत्सुकता नहीं थी। मैं उस माँ के बारे में जानने को उत्सुक था जिसकी खातिर देवव्रत किसी समय शादी भी न करने की प्रतिज्ञा किया करता था। 'यार शादी के बाद माँ को कौन देखेगा। बड़े भाई साहब का हाल देखो। कभी मिलने भी नहीं आते।' वह भावुक हो उठता था, 'जहाँ नौकरी करूँगा वहीं माँ को लिवा ले जाऊँगा। एक काम वाली रख लूँगा। क्या करना शादी-वादी करके।' उसी देवेंद्र से अब मैं माँ के बारे में पूछ रहा हूँ तो वह बेटे के बारे में बताने लगता है।

'माँ की सीरियसनेस का कब पता चला?'

'बताता हूँ। एक मुसीबत हो तो बताऊँ। रात-दिन के जागने से कुसुम की तबियत भी बिगड़ गई। इसे टाइफाइड हो गया। इसे भी अकेला नहीं छोड़ा जा सकता था। 15 दिन बाद डाक्टर ने जाने की सलाह दी। तब इनको लेकर यहाँ पहुँचा। पंद्रह दिन पता ही नहीं चला कब निकल गए।'

'तुम यहाँ किस तारीख को पहुँचे?'

'सत्ताइस की शाम को। यहाँ देखा तो माँ की हालत एकदम खराब। फौरन डाक्टर को बुलाकर लाया। वह काफी अच्छा डाक्टर है। अमित को केवल उसी की दवा से आराम होता है। मेरा भी पेट इसी ने ठीक किया था।'

'भाई साहब बगैरा कोई था यहाँ?'

'नहीं, कोई नहीं था। सिर्फ पिताजी थे। वे वैसे ही बीमार रहते हैं। भाई साहब का तो तुम्हें पता ही है। दो साल तो उनको बिना आए हो गए। काफी पहले एक पत्र आया था कि मैं इस बार जुलाई में नहीं आ पाऊँगा। बड़ी लड़की के पेपर्स हैं। उसके बाद कोई पत्र नहीं आया।'

'फिर डाक्टर ने क्या बताया?'

'डाक्टर ने पूरा चेकअप किया। ग्लूकोज चढ़ाया। दो इंजेक्शन भी लगाए। पूरी तरह आराम आ गया था। मगर दो दिन बाद ही अमित की तबियत फिर से सीरियस हो गई। उसे लेकर मेरठ भागना पड़ा। माँ को तो यह बात बताई भी नहीं वरना उसे तो बहुत धक्का पहुँचता। मेरठ तीन दिन उसे लेकर पड़ा रहा। बस यह समझो कि उसे दूसरा जीवन मिला है। चौथे दिन गाँव लौटा तो देखा कि... माँ के होंठ नीले पड़ गए हैं। उसने पहचानना भी बंद कर दिया है। मुश्किल से पंद्रह मिनट पास बैठा हुँगा कि उसने...'

उसने रूमाल आँखों पर रख लिया। मैं भी शून्य में खो गया। कुछ क्षण हम एक-दूसरे से विपरीत दिशाओं में देखते हुए चुप बैठे रहे।

मैंने बिना कुछ कहे उसकी पीठ पर हाथ रख दिया, 'सब वक्त की बात है। छह महीने में क्या से क्या हो गया। एक तरफ अभी-अभी अमित की खुशी आई थी और अभी यह वज्र आ गिरा।'

'सचमुच मुझे बिल्कुल ऐसी उम्मीद नहीं थी। सोच रहा था कि अब की बार माँ को साथ ले जाऊँगा। वहीं जरा ठीक से देखभाल हो जाएगी। और मैं रोज-रोज के आने-जाने से बच जाऊँगा। अमित को खिलाने से माँ का भी मन लगा रहेगा और कुसुम की कुछ मदद हो जाती। सब प्लान रखा रह गया। कोई आया तो ढंग की नहीं मिलती आज के जमाने में।' उसने फिर से आँखें पोंछीं। वातावरण पुनः गंभीर हो गया।

'अब क्या सोचा है? ' मैंने पूछा।

'बस कल जाना है।' उसने गहरी साँस छोड़ते हुए घड़ी में समय देखा। 'वहाँ सारा काम खराब हो गया होगा। जुलाई-अगस्त में ही कुछ कमाई हो जाती है। इस बार वह भी बेकार गई।'

'क्यों बेकार क्यों गए?' मैं विषय बदलना चाहता था।

'मैं इस बार कमेटी में था। जुलाई में हम लोग मास्टरों के ट्रांसफर आदि करते हैं। उसी में कुछ कमाई हो जाती है। एक हजार रुपये तो मैंने खराब कर दिए थे कमेटी में रखे जाने के लिए और सिफारिश अलग से। कम से कम दस हजार का नेट नुकसान हो गया और बीमारी का खर्च अलग। यहाँ न आना पड़ता तो भी मैं सब सँभाल लेता। सचमुच बड़े गलत समय पर माँ की डैथ हुई।'

'अब कुछ नहीं हो सकता?'

'होने को तो अभी भी हो सकता है। मेरा बास मुझे मानता भी बहुत है। पर अब कहने तो मैं जाऊँगा नहीं उससे। उसे क्या पता नहीं होगा सारी परेशानियों का।'

'एक बार कह कर तो देखो।'

'नहीं, नहीं। अपन से चमचागिरी ही तो किसी की नहीं होती। वो चाहता है कि मैं जाकर मक्खन लगाऊँ। तुम्हें पता ही है वो हमने सीखा नहीं। अब कोई न कोई और चमचा कमेटी में आ गया होगा।'

'कोई बात नहीं। ये तो सब चलता रहता है। इस साल की कमी अगले साल पूरी कर लेना। पिताजी को तो अब साथ ही ले जाओगे?'

'हाँ यार। यह भी एक समस्या है। समझ नहीं आता क्या किया जाए। साथ ले जाऊँ तो मुश्किल, न ले जाऊँ तो मुश्किल। इनकी वजह से कुसुम के चार काम बढ़ जाएँगे और इनका तिनके का सहारा नहीं, ऊपर से नखरे अलग। दिन भर अपनी ही चक-चक लगाए रहेंगे।'

तभी एक लड़की बच्चे को देबू की गोद में थमा गई। देबू खड़ा होकर उसे चुप कराने लगा।

वह खड़ा-खड़ा कहने लगा, 'वैसे यह सचमुच है बहुत लक्की। आठ मई को इसका जन्म हुआ था और बारह को मेरे प्रोमोशन के आर्डर आ गए थे। इसकी नानी तो 'लक्की' कहकर ही बोलती है। रोते नहीं हैं बेटे। देखो, इधर देखो। कौन आया है।'

मैं भी खड़ा हो गया, 'हल्लो बेटे। हाथ मिलाओ। ऐच्छे। शाबाश।'

'इस बार तो यार इसके जन्म पर कोई प्रोग्राम भी नहीं करा पाए। अगले साल करेंगे। आना है तुम्हें, अभी से कहे देते हैं।'

'बिल्कुल यार। न आने वाली तो कोई बात ही नहीं हैं।'

'अच्छा बेटे। टाटा करो अंकल को। टाटा! टाटा!' बेटे का हाथ पकड़ कर वह स्वयं हिलाने लगा।

देबू के चेहरे पर मौत की छाया नहीं बेटे के जन्म का उल्लास साफ बिंबित हो रहा था। मुझे लगा मैं कोई मातम नहीं जन्मदिन मनाकर लौट रहा हूँ।

लौटते समय मेरे दिमाग में कोई असमंजस नहीं था।